# सार्वजनिक बहस–1

Tata Institute of Social Sciences
Patna Centre

# प्रवसन की लोकसंस्कृति में स्त्री की छवि

धनंजय सिंह

जून 2017

Tata Institute of Social Sciences
Patna Centre

# प्रवसन की लोकसंस्कृति में स्त्री की छवि

धनंजय सिंह

जून 2017

# सार्वजनिक बहस–I

प्रकाशक :
टाटा इंस्ट्टियुट ऑफ सोशल साइंसेज, पटना केन्द्र
तक्षशिला कैम्पस
डीपीएस सीनियर विंग
चंदमारी गांव, दानापुर कैन्टोन्मेंट
पटना – 801502 (बिहार) भारत
वेबसाइट : www.tiss.edu
इ–मेल : patnacentre@tiss.edu

यह प्रकाशन "पलायन" पर आयोजित एक लेक्चर सीरिज का हिस्सा है। हम लेक्चर सीरिज और प्रकाशन में सहयोग के लिए तक्षशिला एजुकेशनल सोसाइटी के प्रति आभारी हैं।

# प्रवसन की लोकसंस्कृति में स्त्री की छवि[1]

**धनंजय सिंह[2]**

हिन्दुस्तान के सबसे बड़े भाषाई क्षेत्र भोजपुरी प्रदेश से होने वाले प्रवसन से निर्मित तीन लोकपरंपराएं रही हैं – बनिजिया लोकपंरपरा, सिपहिया लोकपरंपरा और बिदेसिया लोकपंरपरा। इनमें सामाजिक व सांस्कृतिक रूप से विभिन्नताएं होने के बावजूद इन तीनों की संवेदनाएं आपस में आदान–प्रदान करती रहती हैं। प्रस्तुत पेपर में इन्हीं तीन लोकपंरपराओं में स्त्री की छवि दिखाने का प्रयास किया गया है। भोजपुरी क्षेत्र से प्रवसन सामान्यतः पुरूषों का होता रहा है, जिसका प्रभाव स्त्रियों पर बड़े गंभीर रूप में पड़ता है। पुरूष के अभाव में सारी जिम्मेदारी स्त्री पर आ जाती है जिसे निभाने के लिए उसे कई भूमिकाओं से गुजरना पड़ता है। भूमिका निवर्हन की स्थिति में वह एक तरफ वियोग की पीड़ा झेलती है, तो दूसरी तरफ पारिवारिक व सामाजिक उत्पीड़न (यौन उत्पीड़न भी) की शिकार भी हो जाती है और तीसरी तरफ वह सशक्त भी होती है। उसका सशक्तीकरण खेती–बारी और गांव–घर की सामाजिक जिम्मेदारियों को कुशलता से निभाने के अर्थ में है, न कि आर्थिक रूप से पूरी तरह से स्वावलंबन के अर्थ में। लोकसाहित्य की सभी विधाओं पर निगाह रखने पर देस–परदेस में या परदेस की स्त्री का वियोगी एवं उत्पीड़ित रूप ही दिखाई देता है, उसका सशक्त रूप नहीं दिखाई देता है। अर्थात् पुरूषों द्वारा गाये जाने वाले गीतों और गाथाओं की तरह सवर्ण स्त्रियों के गीतों में भी स्त्री की नकारात्मक और आदर्श छवि ही है। बेशक स्त्रियों के गीत में स्त्री की नकारात्मक छवि कम है। लेकिन यहां स्त्री बेहद उत्पीड़ित, छलित व दलित है। दूसरे शब्दों में, उत्पीड़न की आह तो है लेकिन प्रतिरोध का स्वर नहीं। लेकिन निम्नजातीय स्त्रियों के लोकगीतों में कहीं बड़े तीखे शब्द हैं तो कहीं स्वर का कड़ा प्रतिरोध है। प्रतिरोध बेहद ही कर्कश शब्दों में है। भाषाई संस्कार तथाकथित अश्लीलता को पार कर गई है। अश्लीलता या फूहड़ता कई अर्थों में अपने प्रतिपक्ष के समक्ष सशक्त छवि बनाती है भले ही प्रतिपक्ष उसे असभ्य, गंवार, पिछड़ा इत्यादि समझता हो।

वैचारिकी के इस संक्रमणशील दौर में जहाँ एक तरफ प्रत्येक चीज के अंत की घोषणा करके भूमंडलीकृत सांस्कृतिक साम्राज्यवाद को मजबूत किया जा रहा है वहीं दूसरी तरफ दबी अस्मिताएँ न केवल अपने अतीत की खोज कर रही हैं बल्कि अपना इतिहास भी रच रही हैं। एक तरफ भूमंडलीकृत साम्राज्यवाद परंपरागत शक्तियों को ही मजबूत आधार प्रदान कर रहा है तो दूसरी तरफ दबी अस्मिताएं भी उभरकर सामने आ रही हैं अर्थात् वर्तमान दौर यदि अस्मिताओं को रौंदने का

1 प्रस्तुत पेपर टाटा इंस्टीट्युट ऑफ सोशल साईंसेज, पटना केन्द्र और इतिहास विभाग, पटना विश्वविद्यालय द्वारा सयुंक्त रूप से आयोजित 23 जुलाई, 2016 को दिये गये सार्वजनिक व्याख्यान का संशोधित संस्करण है।

2 व्याख्यान के समय लेखक नेहरू स्मारक संग्रहालय एवं पुस्तकालय, तीन मूर्ति भवन, नई दिल्ली में जूनियर फेलो थे।

दौर है तो उन अस्मिताओं के उभरने का भी दौर है। अस्मिताएँ अपने अतीत के उत्पीड़नों की खोज कर रही हैं। अतीत का उत्पीड़न उनमें एका की भावना पैदा कर रहा है और प्रतिरोध की ताकत दे रहा है। इसलिए वे अपने स्मृतियों के सहारे अपने इतिहास का निर्माण कर रही हैं। उनमें से स्त्री अस्मिता भी अपने अतीत की स्मृतियों के सहारे यातनाओं का लेखा–जोखा ही नहीं कर रही है बल्कि अतीत में दबी और उठी स्त्री आवाज़ को बुलंद भी कर रही है। लोकगीत स्मृतियों में पड़े मौखिक स्रोत हैं। इनके भीतर से आज की स्त्री वैचारिकी अपनी शर्तों पर परंपरागत व्यवस्थाओं पर प्रश्नचिन्ह लगाते हुए ऐतिहासिक व सामाजिक सच्चाइयों की पड़ताल कर रही है। परंतु इसकी भी अपनी पेचिदगियाँ हैं जो कई पदक्रमों में विभाजित हैं। इस वैचारिकी के केन्द्र में अभी तक सिनेमा, मीडिया, विश्वविद्यालय, स्कूल, कार्यालय, कारखाना, शहर की झुग्गी–झोपड़ी की स्त्रियाँ ही बनी हुई हैं। गाँव घर की चहारदीवारी एवं परदे के भीतर रहने वाली 'अनबोलता' (घर के बाहर मूक) स्त्री अभी तक नहीं आ पायी है। यह अलहदा है कि उसने अपने गीतों में अपनी बोलती तस्वीरों को चित्रांकित किया हुआ है और उन तस्वीरों की आवाज़ न जाने कितनी सदियों से गूँज रही है। निःसंदेह ये स्त्रियाँ हाशिये पर हैं। इस संबंध में स्त्री विमर्शकारों के लिए क्या यह कहकर हम आत्मतुष्टि कर लें कि इनके पास शक्ति एवं संसाधन इतने कम हैं कि उनके पास इनकी पहुँच नहीं हो पा रही है या फिर यह कहना चाहिए कि हाशिये के ये विमर्शकार भी अपने धर्म, अपनी जाति एवं अपने अभिजात वर्गीय स्वभाव वाली भावना से ग्रस्त हैं और स्वहितानुसार स्त्री–विमर्श का इस्तेमाल करते हैं। ऐसे मे चहारदीवारी के भीतर रहने वाली और मजबूरन पलायन करने वाली स्त्रियों के उत्पीड़न एवं उनकी आवाज को सामने लाने का महत्व बढ़ जाता है।

इस पेपर में स्त्री वैचारिकी के तहत यह देखने का प्रयास है कि पुरूष प्रवसन के दौरान दाम्पत्य जीवन में किस तरह आशा–निराशा की कहानी बनती है और प्रवास के उपरांत परदेशी की स्त्री के पारिवारिक व सामाजिक संबंधों को निर्धारित करने में उसके लिए वर्ग, धर्म व जाति की भूमिका किस रूप में होती है? उसकी स्मृति और इतिहास के बीच कैसा तनाव रहा है? मौखिक परंपरा में उसके नैतिक आग्रह किस रूप में मिलते हैं? घर लौटने पर परदेशी पति उसकी यौन–पवित्रता पर कैसा सवाल करता है? दूसरे यह जानने का प्रयास किया गया है कि भोजपुरी क्षेत्र से मजबूरीवश पलायन करने वाली औरतों की सामाजिक एवं सांस्कृतिक छवि किस रूप में अभिव्यक्त हुई है। इसके अतिरिक्त, उनके प्रति लोकसमझ की सामाजिक–सांस्कृतिक बर्तावों की भी पड़ताल की गई है। इन सवालों के उत्तर लोकसाहित्य जितनी शिद्दत व जीवंत रूप में संजोये हुए है, उतना अन्य साहित्य नहीं।

## देस में परदेसी का स्त्री परिवार

आइये देखें, लोकसंस्कृति में प्रवसन से प्रभावित स्त्रियों की छवि किस रूप में है। अधिकांश लोकगाथाएं पुरूषों द्वारा गायी जाती हैं। वहां परदेसी की स्त्री की छवि सामान्यतः आदर्श रूप में है। लेकिन अन्य विधाओं में आदर्श के इतर भी है। लोकगीतों में परदेश गमन के दौरान पति–पत्नी के बीच के संवाद बेहद जीवंत दृश्य के साथ उपस्थित हुए हैं। जरा निम्नलिखित गीत को देखिये –

''रून–झुन खोल ना केवड़िया,
हम बिदेसवा जइबो ना।''

''जो मोरे संइया तुंहूं बिदेसवा जइब ना,
तूं बिदेसवा जइब ना।

हमरा भइया के बोला द, हम नइहरवा जइबो ना।''

''जो मोरे धनिया तुंहूं नइहरवा जइबू ना,
नइहरवा जइबू ना।

जेतना लागल बा रूपइया
ओतना देई के जइह ना।''

''जो मोरे सइयां तुंहूं लेब अब रूपइया,
तूं रूपइया लेब ना।

जइसन बाबा घरवा रहनी,
ओइसन करिके दीह ना।''

''रून–झुन खोलऽ ना केवड़िया,
हम बिदेसवा जइबो ना।''[3]

इस गीत में पति बिदेस जाना चाहता है। वह अपनी पत्नी से किवाड़ी (दरवाज़ा) खोलवा रहा है। पत्नी किवाड़ी खोलने से पहले कहती है कि जब वह बिदेस जा रहा है तो उसे वह उसके नइहर (मायके) पहुंचा दे। पति पत्नी पर अब तक जितना खर्च कर चुका है उसकी कीमत मांगता है। इस पर जब वह अपने बाबा घर जैसे थी यानी अपनी पवित्रता की याद दिलाती है तो वह निरूत्तर हो जाता है। पति के बिदेस जाने के लिए यदि वह स्वीकृति दे भी देती है तब वह पूछती है

3 कृष्णदेव उपाध्याय, हिन्दी प्रदेश के लोकगीत, (इलाहाबादः साहित्य भवन ;प्रा. लि., सं. 1990), पृ. सं. 73–74

कि घर पर उसका मन कैसे लगेगा और फिर कलकत्ता जैसा परदेस उसके पति के लिए ठीक नहीं है। निम्नलिखित गीत को देखिये –

''कलकता तू जन जा राजा, हमार दिल कइसे लागी।
ओही कलकतवा में रंडी बसतु है, मोजरा करै हैं दिन–राति।

हमार दिल कइसे लागी।
ओही कलकतवा में मलेरिया बसतु है, गजला करै हैं दिन–राति।

हमार दिल कइसे लागी।
ओही कलकतवा में तमोलिया बसतु है, बीरवा लगै हैं दिन–राति।
हमार दिल कइसे लागी।''[4]

पत्नी कलकत्ता जाने वाले पति से निहोरा करती है कि वह कलकत्ता न जाए और बताती है कि वहां रंडी वेश्यायें रहती हैं, दिन–रात मोजरा करती हैं, वहां मलेरिया है, वहां तमोली हैं जो रात–दिन पान–बीड़ा लगाकर बेचते रहते हैं। भिखारी ठाकुर के लोकप्रिय नाटक की नायिका प्यारी सुंदरी भी कलकत्ता को ऐसा ही देखती है। हालांकि लोकसंस्कृति में कलकत्ता अपनी नकारात्मक छवि के साथ सकारात्मक रूप में भी उपस्थित है।

विवाहोपरांत पत्नी का पति के घर आने को भी एक प्रकार से प्रवसन कह सकते हैं। प्रवसन के उपरांत पत्नी अपना दुख किससे कहे। जैसे पति को प्रवास स्थान अजनबी लग रहा है, वहाँ जाकर अपनी जड़ से उखड़ गया है वैसे ही इधर पत्नी भी ससुराल में अजनबीपन महसूस कर रही है। मैके थी तब वह खेत खलिहानों में घूमने चली जाती थी, सहेलियों के साथ झूला झूल आती थी, नहर या नदी में स्नान कर आती थी, बाजार तक घूम आती थी, मनचाहा काम कर आती थी। यहाँ ससुराल में रीति–रिवाज का खास ध्यान रखना पड़ता है। घर आंगन ही उसके रंगस्थल हैं। प्रवास में पति के ऊपर यदि मालिक का शिकंजा है तो यहाँ पत्नी के ऊपर सास, ससुर, देवर, ननद इत्यादि की उसकी प्रत्येक गतिविधि पर दृष्टि रहती है। मायके से बिछड़न और पति का परदेश गमन उसे ससुराल में प्रवासी जीवन जीने का एहसास करा रहे हैं। मायके से बिछड़न न केवल गाँव से बिछड़न है, बल्कि उसका बहुत कुछ छूट गया है। उसके पास बस वहाँ की यादें हैं। अब वह स्मृति और इतिहास के तनाव में झूल रही है। मैके की सुखद स्मृतियाँ उसे क्लेश प्रदान कर रही हैं– 'धन गइल धनबाद कमाये, कटनी बहुत कलेस, अंगनवा लागेला परदेस।' इस अकेलेपन में वह घर में अपने मायके के अतीत की स्मृतियों से मुक्त होती है तो पुनः पति की स्मृतियों में खो जाती है। और जब दोनों ही स्मृतियों से

4 डब्ल्यू. एच. आर्चर और संकटा प्रसाद, भोजपुरी ग्रामगीत, (पटना : पटना लॉ प्रेस, 1943), पृ. सं. 171

मुक्त होती है तो पुनः अकेलापन। ऐसे में वह अपने मायके से ही नहीं बल्कि प्रियतम से भी बात करना चाहती है। परंतु बात कैसे करेगी? उसके प्रियतम कहाँ होंगे? उसकी बातों को उन तक कौन पहुँचायेगा? छप्पर पर कागा आया है। वही उसके दिल के हाल को उन तक पहुँचायेगा। आंगन में लगे पेड़ या छप्पर पर आने वाले ये पंक्षी ही उसके अकेलेपन के साथी होते हैं। वह अपने परदेसी पति की खबर लाने के लिए कागा को दूध–भात खाने का लालच दे रही है –

'ननदि के अंगना चनन घन गछिया हो रामा।

ताहि चढ़ि बोलेला कागवा कुलच्छन हो रामा

देबऊ रे कागवा, दूध–भात दोनिया हो रामा।

खबर ना ला दे बलम परदेसिया हो रामा।'[5]

अर्थात् हे काग! मेरे परदेशी बालम की खबर ला दोगे तो तुम्हें दूध भात खिलाऊँगी। अरे! यह कागा क्या सुना रहा है? प्रियतम ने दूसरी स्त्री रख ली है! वह स्त्री मुझसे भी सुंदर है! मेरा इतना अपमान? वह अकेलेपन और अपमान की इन्हीं स्थितियों से गुजर रही है। स्त्रियाँ अपने कष्टों को अपने श्रमगीतों में मुखरित करती हैं। घर में बच्चे का जन्म हुआ तब उस माँ का दायित्व और बढ़ जाता है। उस दायित्व को हमारी परंपरागत एवं सनातनी संस्कृति मातृधर्म स्वीकार करती है, उसे उसके श्रम से नहीं जोड़ती है। बच्चा जनने तक बहू का अपने ससुराल में रहते हुए एक लंबा समय बीत चुका होता है। अब वह घर की परिस्थितियों से अच्छी तरह वाकिफ हो चुकी है। इसीलिए अब उसके प्रति परिवार के लोगों का बर्ताव काफी कुछ बदल चुका है। परंतु फिर भी कुछ लाचारियाँ हैं। निम्नलिखित लोरी गीत एक माँ की लाचारी को अभिव्यक्त करता है –

'सुत सुत बबुआ, कुई में के ढेबुआ।

बाप गइले नोकरी, मतारी अकसरूआ।

आजा आजी चनन के, पितिया सहोदर के।

मय खिलवना चानी के, बबुआ रे तु कथि के?

अनन चनन कसतुरी के।[6]

---

5 शाहिद अमीन (संपा.), ए कॉनसाइज इनसाइक्लोपीडिया ऑफ नॉर्थ इंडियन पीजेंट लाइफ, (दिल्ली : मनोहर पब्लिशर्स, 2005), पृ. सं. 267

6 http://ignca.nic.in/coilnet/pdf_data/kvbhoj06.pdf

बच्चा सो नहीं रहा है। माँ सुला रही है। अकेली क्या करे? बाप तो नौकरी करने गया है। दादा दादी चंदन हो गए है। पितिया भी अब अपने कहाँ रहे? सारे खिलौने चांदी के हैं पर बबुआ? बबुआ चंदन कस्तूरी का है। इस लोरी गीत की स्त्री अपनी जीवनचर्या गा रही है। घर से उसका लगाव धीरे–धीरे हो रहा है। यह बच्चा ही उसे इस घर से जोड़ेगा। जैस–जैसे बच्चा बड़ा होता जाएगा, उसका इस घर से लगाव बढ़ता जाएगा। उसके दुख–दर्द सब इसी ससुराल में नियत होने लगेंगे। लेकिन संयुक्त परिवार से यदि वह अलग हो गई तो उसे सास–ननद नहीं, बल्कि गोतिनियां ताना मारेंगी –

''छोटकी गोतिनिया मारे तनवा के बतिया,

पतिया रोई–रोई ना, लिखावे रजमतिया। पतिया...

सोस्ती श्री चिठी राउर भेजनी तेमे लिखल,

छोटका पठरूआ लिखी कतना में बिकाई,

दुखवा के पटल खिचत बानी जँतिया। पतिया..''[7]

यह चिट्ठी के रूप में गीत है। एक परदेशी की पत्नी रजमतिया को उसकी छोटी गोतिनी (देवरानी) ने ताना मारा है। इसलिए चिट्ठी लिखवा रही है। वह लिखवा रही है कि सौ–अस्सी रूपये जो भेजे थे वह मिल गया है। इतने से भी काम नहीं चलने वाला। अभी और जरूरत पड़ेगी। लड़कियां सयानी हो गई हैं। किसी के पास झूला नहीं है तो किसी के पास लूगा (सूती साड़ी) नहीं है। हां, अब कोहड़ा में बतिया धरने लगा है। कबरी बकरी जाड़े की ठंड की वजह से रात में भी मेमिआती है। छोटे वाले पठरू (बकरी का बच्चा) को कितने में बेचा जाए? जल्दी बताइये। मंगरा रोज स्कूल जाने लगा है। लेकिन मौलवीजी (अध्यापक) का ताला तोड़ दिया था। उसको करीमना साथी मिल गया है.....। वह पूरे मुहल्ले भर की खबर लिखवा रही है। इस गीत से मालूम होता है कि परदेशी पति अपने घर से कितना नाभिनालबद्ध है। उसकी सारी चिंताएँ व आशाएँ घर की ओर लगी रहती हैं। वहीं से वह निर्णय करता है। यहां तुलसीराम की आत्मकथा मुर्दहिया में गांव पर रहने वाली परदेसियों की पत्नियों का दर्द बहुत मार्मिकता से उभरकर आया है। ''सन् 1959 की गर्मी ... गांव के कई लोग बंगाल की अनेक कोयलरियों तथा कलकता में मजदूरी करते थे। परिवारों के लिए ये मजदूर अकाल में बादल जैसे आशा के प्रतिरूप थे। विशेष रूप से जब गांव की औरतें अपने पति मजदूरों को मुझसे चिट्ठियां लिखवातीं, तो मेरे सामने एक विचित्र स्थिति प्रकट हो जाती थी।

---

7 http://ignca.nic.in/coilnet/pdf_data/kvbhoj07.pdf. इसे भी देखें – केकरा से कहाँ मिले जाला, कैसेट गायिका शारदा सिन्हा (नोएडा : टी सीरिज सुपर कैसेट इंडस्ट्रीज लि., 1986), साईड ए, पहला गीत. मिथिलेश्वर, भोजपुरी लोककथा, (दिल्ली : नेशनल बुक ट्रस्ट, 2009), पृ सं. 10. इस पुस्तक में पति द्वारा दस–पाँच रूपये भेजे जाने का जिक्र है।

कई औरतें भुखमरी का वर्णन करते–करते रोने लगती थीं। मैं तो स्वयं अपने दुख में डूबता–उतराता फिरता था, किन्तु गांव की रोती हुई मशीनों जैसी इन महिलाओं से मैं अत्यंत विचलित हो जाता था। अनेक बार उनके आंसुओं में मेरे आंसू भी दाखिल हो जाते थे। इन रोती मशीनों में एक थी–किसुनी भौजी। उसका पति कतरास की कोइलरी में कोयला काटता था। नाम था मुन्नी लाल। किसुनी भौजी दो बच्चों की मां थी, किन्तु उम्र मुश्किल से बाईस साल। उसके अंदर दुखड़ा सुनाने की अद्‌भुत वर्णनात्मक शैली थी। जब वह चिट्‌ठी लिखवाती थी, तो लगता था कि दुखड़ा स्वयं अपना आत्मविवेचन कर रहा है। यदि वह पढ़ी–लिखी होती तो शायद दुखांत साहित्य में बहुत कुछ गढ़ती। उसके द्वारा लिखवाई गई अकाल की एक चिट्‌ठी आज भी मुझे अच्छी तरह याद है, जिसकी कुछ पंक्तियां इस प्रकार हैं: 'हे खेदन के बाबू! हम कवन–कवन बतिया लिखाईं? बबुनी बहुत बिलखेले। उ रोई–रोई के मरि जाले। हमरे छतिया में दूध ना होला। दूहै जाईला त बकेनवां लात मारै ले। बंसुवा मजूरी में खाली सड़ल–सड़ल सावां दे ला। उप्पर से ओकर आंख बड़ी शैतान हौ। संझिया क रहरिया में गंवुवा के मेहरिया सब मैदान जा लीं, त उ चोरबती बारै ला। रकतपेनवा हमहूं के गिद्ध नाई तरेरैला। चोटवा से पेटवा हरदम खराब रहेला। हम का खियाई, का खाईं, कुछ समझ में ना आवेला। बबुनी के दुधवा कहां से लिआई? जब उ रोवैले, त कब्बो–कब्बो हम वोके लेइ के बहरवां जाइके बोली ला कि देख तोर बाबू आवत हउवैं, त उ थोरी देर चुप हो जाले। तूं कइसे हउवैं? सुनी ला कि कोयलरी में आग लाग जालें। ई काम छोड़ि दा। गंवुवैं में मजूरी कइ लेहल जाई। सतुवै से जिनगी चल जाई। येहर बड़ी मुश्किल में बीतत हौ। अकेलवैं जियरा ना लागेला, उपरा से खइले क बड़ा टोटा हौ। हो सके त बीस रोपेया भेजि दा। जब अइहा त तुलसी बाबू के एक जिस्ता कागद जरूर लेहले अइहा, ई है सब कर चिठिया लिखै लं। ई बड़ा तेज हउवैं। अउर का लिखाई हम? थोर लिखना, ढेर समझना।'' इस चिट्‌ठी में खेदन किसुनी भौजी का चार साल का बेटा था तथा बबुनी डेढ़ साल की बेटी थी। बंसुवा यानी बंसू पांडे जमींदार थे जिनके यहां किसुनी मजूरी करती थी। चोरबती टार्च को कहते थे। बकेनवां यानी बकेना भैंस थी, जो दुहते समय छटक जाती थी, क्योंकि उसका दूध खत्म हो चुका था। ऐसे ही मिलते–जुलते अनेक प्रकरण उस अकाल के दौरान् मुझसे लिखवाये गये। मैं स्वयं से सारी 'बैरन' चिट्‌ठियां अपने स्कूल पर स्थित एक पोस्ट बॉक्स में डाल देता था।''[8] अपने स्कूली शिक्षा के दौरान् (सन् 1985–90) परदेसियों की स्त्रियों की चिट्‌ठियां इन पंक्तियों के लेखक ने भी न जाने कितने बार लिखी है। कई बार तो भावनाओं को हुबहू लिख देने के एवज में फटकार भी मिली है।

## आदर्श स्त्री की पवित्रता बनाम यथार्थ का दबाव

भारतीय विवाह व्यवस्था के नैतिक मूल्यों में से स्त्री के लिए सतीत्व का आदर्श बहुत

8 तुलसीराम, 'मुर्दहिया' आत्मकथा, (दिल्लीः राजकमल प्रकाशन, 2010), पृ. सं., 90

महत्वपूर्ण है। एकनिष्ठ प्रेम के आदर्श से भोजपुरी लोकसाहित्य बहुत समृद्ध है। नदी मार्गीय बनिजिया में केवट एवं डोम द्वारा गाये जाने वाली गाथाओं की नायिका सती बिहुला, लचिया, देवसुंदरी हो या फिर बनिजिया लोकगीतों की पार्वती, हेवंती, शोभनायक बंजारा की जसुमतिया, लोरिकायन की मंजरी, भगवती हो; सिपहिया लोकसंस्कृति में जालिम सिंह नाटक की निम्नजातीय नायिका दिलमोहिनी हो या फिर बिदेसिया लोकसंस्कृति में बिदेसिया नाटक की नायिका प्यारी सुंदरी जैसे स्त्री। मिथक और लोकगाथा चरित्रों के माध्यम से भोजपुरी लोकसाहित्य ने अपने समाज को खूब उपदेश दिया है। अपने सतीत्व की रक्षा के लिए स्त्रियों ने न केवल पर–पुरूषों के प्रेम प्रस्ताव को ठुकराया है बल्कि जब भी उसके आत्मसम्मान को किसी ने रौंदना चाहा है, उसने सशक्त होकर उस अत्याचारी को खत्म कर दिया है या फिर अनासक्त होकर स्वयं को खत्म करके सतीत्व के महत्व को कायम रखा है। पति परदेश चला गया है। वह बारह वर्ष तक वापस नहीं आया है। पत्नी ने उसकी प्रतीक्षा में अपने सतीत्व को बचाये रखा है। 12 वर्ष बाद उसका पति लौट रहा है, रास्ते में उसे अपनी स्त्री दिखाई पड़ती है। पत्नी पति को नहीं पहचानती है। पहचानेगी भी कैसे? छोटी उम्र में ही पति परदेश जो भाग गया था। ठीक से इसने उसकी सूरत भी नहीं देखी थी। पति मजाक में 'डाल भर सोना', 'मोती के हार' आदि देकर उससे विवाह का प्रस्ताव करता है। पत्नी पति को परपुरूष समझकर जलभुन जाती है। उसके विवाह प्रस्ताव और धन पर आग लगाने को उद्धत हो जाती है– 'आग लागे डाल भर सोनवा में, बजर परे मोतिया के हारवा।' दुनियाबाई के तमाशे की प्यारी सुंदरी और भिखारी ठाकुर के बिदेसिया नाटक की प्यारी सुंदरी भी कई वर्षों से पति की प्रतीक्षा कर रही हैं। पड़ोसी देवर उससे अनुचित संबंध बनाना चाहता है। उसके वासनापरक प्रेम प्रस्ताव को ठुकराकर बिदेसी के आगमन तक अपने सतीत्व की महत्ता को कायम रखती है। यह बड़ा दिलचस्प रहा है कि पुरूष कितनी भी स्त्रियों से संबंध बना सकता है परंतु अनबोलता स्त्री के लिए अन्य पुरूष से संबंध बनाना तो दूर की बात है अपनी पवित्रता का निर्भीक होकर सबूत देना भी उसके लिए चुनौतीपूर्ण काम रहा है। लोकसाहित्य साक्षी है कि इधर पत्नी अपने आत्मसम्मान को पति की इज्जत समझकर अपने सतीत्व की रक्षा करती रही, उधर प्रवास में पति दूसरी स्त्री भी रखता है और घर लौटकर पत्नी के सत की परीक्षा भी लेता है। एक बनिजिया लोकगीत में मिथकीय चरित्र शिव व्यापार करके बारह वर्षों के पश्चात घर लौटे हैं। गौरा से कुशल क्षेम पूछने की बजाय उनकी यौन पवित्रता पर संदेह करते हुए नाना सवालों से परीक्षा ले रहे हैं –

''लवंगिया लदनिया हो महादेव, तिरसुल दीहलन उठंगाई।

बारह बरिस पर अइलन महादेव। गउरा से मांगेलन विचार।।

जब ही जे गउरा देई बरम्हा गोड़ लागेलन। बरम्हा बिसुन दीहलन असीस।।

एहु किरिअवा गउरा हम नाहीं मानब हो। हमरो के द सुरूज विचार।। ...

एहु किरिअवा गउरा हम नाहीं मानब हो। गंगिया विचार मोही देहुं।।

फाटू हूं धरती समाई बलु जइबो। अइसन पुरूख मुँह ना देखबो।।''[9]

यह शिव गौरा गीत है। स्त्रियाँ इसे विवाहोत्सव के अवसर पर मंगलगान के रूप में गाती हैं। यह संस्कार गीत साबित करता है कि पति का पत्नी की यौन शुचिता के प्रति संदेह एवं उसके निराकरण के लिए परीक्षा लेने की एक लंबी पंरपरा रही है। यह परंपरा स्त्रियों की इस मानसिकता को मजबूत करती है कि शिव जैसे भगवान ने अपनी गौरा पर संदेह किया तो हमारी क्या बिसात? इसलिए हमें पति के संदेह को अपनी निर्मलता से दूर करना चाहिए। स्त्री की यौन सुचिता की परीक्षा उसके लिए वैध स्वीकृति बन गई है। इसी तरह सिपहिया लोकपरंपरा के एक जंतसारी[10] गीत में परदेश से लौटा सिपहिया पति किस तरह पत्नी की अंगिया के भींग जाने पर उसकी यौन–शुचिता पर संदेह करता है और तुनककर घर से भागने लगता है–

''मोरा पिछुअरवा रे निबिया के गछिया। से निबिया सीतल जुरि छान।।

रे दैया! निबिया सीतल जुरि छान।।

आहि तरे ऐले रे जुलमि सिपहिया। से पगिया अटकि गइले डार।।

रे दैया! पगिया अटकि गइले डार।।

मोरा पिछुअरवा बढ़ैया भइया हितवा। से निबिया के देउ ना गिराई।।

रे दैया! निबिया के देउ ना गिराई।।

एक छेव मारले दोसर छेव मारलेन। से निबिया गिरेले अरराई।

रे दैया! निबिया गिरेले अरराई।।

ओहि रे निबिया के पलंग सलवलों। से पलंग भइले मजेदार।।

---

9 हंसकुमार तिवारी, भोजपुरी संस्कार गीत, (पटना : बिहार राष्ट्र भाषा परिषद्, 1977), सुचीता रामदीन, संस्कार मंजरी, (मॉरीशस : महात्मा गांधी संस्थान, 1989), 165, उदयनारायण गंगु, मॉरीशस का भोजपुरी लोकसाहित्य एवं भारतीय संस्कृति, (मॉरीशस : महात्मा गांधी संस्थान, मोका, 2002), 284–85, सुरेश गौतम, भारतीय लोकसाहित्य कोश, भाग–6, (दिल्ली : संजय प्रकाशन, 2010), 2761 श्रीधर मिश्र, भोजपुरी लोकसाहित्य : सांस्कृतिक अध्ययन, (इलाहाबाद : हिन्दुस्तानी अकाडमी, 1971), पृ.–276

10 जंतसारी लोकगीत जांता में अनाज पिसते समय गाया जाता है। इस गीत की लंबाई अनाज की मात्रा पर निर्भर करती है और अनाज की मात्रा भोजपुरी प्रदेश की सामाजिक विषमता को समझने में मदद करती है।

रे दैया! पलंग भइले मजेदार।।

आहि पर सुतिलेन जुलमि सिपहिया। से पाटि चोलि भिंगेले हमार।।

रे दैया! पाटि चोलि भिंगेले हमार।।

भैले गरमिया रे भींगि गइले चोलिया। से तनि एक सूतवा बचाई।।

रे दैया! तनि एक सूतवा बचाई।।

एत बचन जालिम सुने हि ना पवलन। से घोड़ी पीठि भैलेन सवार।।

रे दैया! घोड़ी पीठि भैलेन सवार।।

सास के जगवलों ननद के जगवलों। से सैंया मोर रीसल जाए।।

रे दैया! सैंया मोर रीसल जाए।।

सास धैलि अटुका ननद धैली पटुका। से हम धैनि घोड़ा के लगाम।।

रे दैया! हम धैनि घोड़ा के लगाम।।

छाडु छाडु अटुका ओ छाडु छाडु पटुका। से छाडु धैनि घोड़ा के लगाम।।

रे दैया! छाडु धैनि घोड़ा के लगाम।।

ऐसन बात धनि हम नहिं सहबों। से हम करबों दोसर बिआह।।

रे दैया! हम करबों दोसर बिआह।।

एतिना वचन सुनि काढ़लों कटरिया। से मारू सैंया जिअरा हमार।।

रे दैया! मारू सैंया जिअरा हमार।।

सास समुझौलि ननद समुझौलि। से मानि गैले बलमु हमार।।

रे दैया! मानि गैले बलमु हमार।।''[11]

इस जंतसारी गीत में एक सिपहिया की पत्नी कहती है कि मेरे घर के पीछे नींबू

---

11 हूज फ्रेजर, फोकलोर फ्रॉम इस्टर्न गोरखपुर, जॉरनल ऑफ एशियाटिक सोसायटी ऑफ बंगाल, वाल्यूम 53, भाग 1, (हिस्ट्री, एंटीक्वेटीज, एंड सी), (संख्या 1 से 4, 1883, 23 प्लेट सहित), पृ. सं. 1–27

का गाछ (छोटा पेड) है। उसकी छाया शीतल है। उसी तरफ से जुल्मी सिपाही आ रहा था कि उसकी पगड़ी नींबू की डाली में अटक गयी। मैंने घर के पीछे रहने वाले बढ़ई से कहकर नींबू की डाली को काटकर गिरवा दिया और उस डाली से पलंग बनवाया। वह पलंग बड़ी मजेदार बनी। उस पर मेरे जुल्मी सिपाही ने शयन किया लेकिन मेरी अंगिया (चोली) भींग गयी तो मैंने अपने जुल्मी सिपहिया को कहा कि जरा हटकर सोए। मेरी इतनी–सी बात को वह ठीक ढंग से सुन भी नहीं पाया था कि वह घोड़ी की पीठ पर सवार होकर चल पड़ा। मैंने सास और ननद को जगाया और बताया कि मेरे सिपाही सैंया रीस (गुस्सा) कर जा रहे हैं। सास ने अटुका पकड़ा, ननद ने पटुका पकड़ा और मैंने घोड़े की लगाम पकड़ी। मेरे सैंया ने अटुका, पटुका और लगाम को छोड़ने को कहा और कहा कि अब मैं दूसरा विवाह करूंगा। इतनी बात सुनकर मैंने कहा कि हे सैंया! अपनी कटार निकालो और मेरा जिअरा (प्राण) मार डालो। मेरी सास ने समझाया, ननद ने समझाया तब जाकर मेरे बालम माने।

जैसा कि शुरू में ही संकेत किया जा चुका है कि ये तीनों लोकपरंपराएं आपस में संवेदनाओं का आदान–प्रदान करती रहती हैं। बावजूद इसके भोजपुरी समाज का भूगोल एक ही है और भोजपुरिया समाज विवाह व्यवस्था में विवाह पूर्व ही स्त्रियों की मानसिकता को इस रूप में तैयार करता है कि ससुराल में कष्टों को झेलना है, यदि कोई ताना मारता है या उसके मैके वालों की गाली देता है, उसके कामों में कमियाँ ढूँढ़ता है तो भी पलटकर उसे भरमुँह जवाब नहीं देना है। भोजपुरी समाज दुल्हन के ऐसे दीनहीन चरित्र को अपने लोकसाहित्य के जरिये आदर्श रूप में प्रस्तुत करता है। स्त्री का यह आदर्श चरित्र कमोबेश सभी जातियों व वर्गों के लिए रहा है। परंतु भोजपुरी प्रदेश में कई ऐसी जातियाँ हैं, जो संस्कृति और इतिहास के तनाव में अपने को यथार्थ के हवाले कर देती हैं, ऐसा बहुधा निम्नवर्गीय समाज की बिदेसिया लोकपंरपरा में हुआ है। भिखारी ठाकुर का नाटक गबरघिचोर इसका पुख्ता सबूत है। इसके अतिरिक्त, निम्नवर्गीय स्त्रियों के लोकगीतों में संस्कृति की तथाकथित पवित्रता मसक गई है। यद्यपि निम्नवर्गीय समाज में बराबर श्रम करने से पुरूष एवं स्त्री के बीच एक अलग तरह का मानसिक रिश्ता बनता है फिर भी उनकी सामाजिक व सांस्कृतिक मान्यताएं तो होती ही हैं जो उनके बीच के रिश्तों को निर्धारित करने में अहम भूमिका निभाती हैं। गौड़, नट या अन्य दलित जातियों की स्त्रियाँ परिवार में समान श्रम करती हैं, इसलिए कष्ट मिलने पर मुखर हो जाती हैं। निम्न गीत पर गौर करते हैं –

''फूल एक फुलि गइले; फूलेला दावानवाँ।

पिया मोर गइले बिदेसवा; कइके गवनवाँ।।1।।

जाँघ तोर थाके रे पियवा; बँहिया लागो घुनवाँ।

जाहि हाथे डलले रे मुअना; सिर में सेनुरवा।।2।।

फोरबो में संकर चुरिया; मेटबि सेनुरवा।

हतबो में आल्हर जियरा; तोहरे कारानावाँ।।3।।

मति फोर संख के चूडिया; मति मेटहु सेनुरवा।

जनि हत आल्हर जियरा; रहबो हजुरवा।।4।।''[12]

यह गौड़ जाति के द्वारा गाया जाने वाला गीत है। जाहिर है कि गौड़ हिन्दू समाज में निम्नजाति मानी जाती है। इस गीत में गौड़ स्त्री कहती है कि दौना के फूल फूल रहे हैं। मेरा पति गौना कराकर परदेस चला गया। वियोग की व्यथा देने के कारण वह पति को शाप देती हुई कहती है कि हे पिया! परदेस जाते समय तुम्हारा पैर थक जाए और जिन हाथों से तुमने मेरी मांग में सिन्दुर लगाया उनमें घुन लग जाए। अब मैं अपनी शंख की चूडियों को फोड़ दूँगी, सिंदुर को मिटा दूँगी; अपने कोमल प्राणों को नष्ट कर दूँगी। इस पर पति ने उत्तर दिया कि हे प्यारी! तुम अपनी शंख की चूड़ियों को मत फोड़ो, माँग की सिंदुर को मत मिटाओ और अपने प्राणों को मत छोड़ो। मैं तुम्हारे सामने ही रहूँगा, परदेस नहीं जाऊँगा। इस गीत में पत्नी परदेश जाने वाले अपने पति को जिन शब्दों में गाली एवं शाप दे रही है उनसे भोजपुरी समाज का निम्नवर्गीय एवं निम्नजातीय गौड़ समाज है। लेकिन कई बार लोकगीतों की प्रस्तुति में जातीय सामाजिकता की पहचान नहीं हो पाती है। निम्नलिखित गीत की नायिका अवैध यौन–संबंध से गर्भवती हो गई है। अब वह उसे वैध करने के लिए अपनी ननद की सलाह से नटिन का रूप धारण करके अपने पति के पास पहुंच जाती है –

''मोरा पिछुअरवा ए ननदी; चंपवा के फूलवा नु रे जी।

चंपवा के फूलवा ए ननदी; रहेला गरभवा नु रे जी।।1।।

इहे गरभवा ए ननदी; केकरा सिरे ढारबि नु रे जी।

आरे सामी मोर गइले ए ननदी; राजवा के नोकरिया नु रे जी।।2।। ...

जिन्हि कर होइहें ए ननदी; हाथ के मुंदरिया नु रे जी।।13।।

उनकर जनमल ए ननदी; रोवेला होरिलवा नु रे जी।।14।।''[13]

12 जॉर्ज ए. ग्रियर्सन, सम बिहारी फोक–सांग्ज, जे. आर. ए. एस. (जॉरनल ऑफ रॉयल एशियाटिक सोसायटी) न्यू सीरीज़ वाल्यूम 16, सं. 2, (अप्रैल 1884), पृ. सं. 196–216 इसे भी देखें, कृष्णदेव उपाध्याय, भोजपुरी लोकगीत–द्वितीय भाग, (प्रयाग : हिन्दी साहित्य सम्मेलन, संस्करण, 1966), पृ. सं. 306

13 वही. पृ. सं. 91

इस लंबे जँतसारी गीत में एक परदेसी की पत्नी अपनी ननद से कह रही है कि 'हे ननद! मेरे घर के पीछे चंपा का फूल है। उसके रस को लेने के लिए आए हुए भंवरे (छैला) के द्वारा गर्भ रह गया। यह गर्भ–धारण मैं किसके मत्थे मढ़ूं क्योंकि मेरा पति राजा की नौकरी करने के लिए परदेस चला गया है। मेरा देवर अभी बहुत छोटा है। अतः यह गर्भ मैं किसके मत्थे मढ़ूं? ननद सलाह देती है 'तुम अपने हाथ में बांस की कच्ची पतली छड़ी ले लो और अपनी कांख में बांस की बनी चंगेली दबाकर रखो। नेटुअइन (नेटुआ की स्त्री) का रूप बनाकर तुम मेरे भाई के पास पहुंच जाओ। वह नेटुअइन के वेश में एक कोस गयी, दो कोस गयी; परंतु तीसरा कोस जाते ही हल्ला हो गया कि एक नेटुअइन आ रही है। परदेस में स्थित पति ने उससे पूछा कि 'हे नेटुअइन! मेरे दर्द को दूर करने के लिए तुम क्या लोगी और अपनी सुंदरता का तुम कितना मूल्य लोगी?' नेटुअइन ने उत्तर दिया – 'दर्द को दूर करने के लिए मैं केवल एक टका–दो पैसा लूंगी। परंतु मेरे सौंदर्य का मूल्य अनमोल है।' पति ने फिर पूछा – 'हे नेटुअइन! तुम अपने सौंदर्य के लिए कौड़ी लोगी या ढेबुआ (पैसा) लोगी अथवा लाल पीली मुहर (अशरफी) लोगी।' नेटुअइन ने उत्तर दिया–'न तो मैं कौड़ी लूंगी और न अशरफी ही लूंगी। मैं तो केवल तुम्हारे हाथ की अंगूठी लूंगी।' नेटुअइन उस अंगूठी को लेकर घर लौट आयी। घर लौटकर आने पर एक घड़ी रात बीती, पिछली पहर की रात भी बीत गयी; परंतु प्रातःकाल होते ही उस स्त्री को लड़का पैदा हुआ। इतने में ही बारह वर्ष के बाद उसका पति परदेस से लौटकर चला आया। ननद ने अपनी भाभी से पूछा –'हे भउजी! यह किसके द्वारा पैदा किया गया बालक रो रहा है?' भाभी ने उत्तर दिया– 'जिसके हाथ की मुझे दी गई यह अंगूठी होगी, उन्हीं के द्वारा पैदा किया गया यह बालक रो रहा है।' अर्थात् भोजपुरी प्रदेश में भी यौन–संबंधों के प्रति स्त्रियों का मुक्त व्यवहार नट जाति ही में रहा है अर्थात् नट समुदाय को छोड़कर कोई ऐसा समुदाय नहीं है जिनमें यौनिकता के प्रति खुली समझ रही हो। प्रवसन की बनिजिया और सिपहिया लोकसंस्कृति में परदेसी पति की गर्भवती स्त्री को भाठ (नदी, कुएँ या पोखर इत्यादि में जान से मार) दिया गया है या फिर घर से उसे बेला (जैसे माल–मवेशियों को उनके खूंटे से खोलकर चरने के लिए भगाया जाता है) दिया गया है। बनिजिया लोकपंरपरा की प्रसिद्ध लोकगाथा शोभनायक बंजारा में शोभा की गर्भवती पत्नी जसुमतिया को भगा दिया जाता है हालांकि उसका गर्भ उसके पति का ही है। उसने गवने की पहली रात पति शोभा के साथ बिताई थी जिसकी खबर उसने अपने छोटे भाई चतुरगुन को दी थी। लेकिन उसकी सास ननद दोनों मिलकर उसे घर से निकाल देती हैं –

''भौजी अपने तूँ नैहरा में इजते गौवलू हो ना।

भौजी भैया सिर अब तूँहूँ ठोकलू हो ना।

माता भइया बहरे बाहर गैले मोरंग देसवा हो ना।

रामा बारी के छवे त महिना के गरभवा हो ना।

रामा मारे लगली बारी कर ससुई हो ना।

रामा छिनि लेले अब अभरनवा हो ना।

रामा खेदि देले घर से बहरवा हो ना।''[14]

प्रवसन की इन लोकपंरपराओं ने इस तरह की स्त्रियों को गांव के बाहर बाग में गोड़िन (पत्तियां बुहारने) का काम करने की सजा को बेहद संवेदनशीलता से अभिव्यक्त किया है। पुरूषों और सवर्ण स्त्रियों द्वारा गाये जाने वाले गीत–गाथाओं में परदेसियों की स्त्रियां प्रतिरोध करती नहीं दिखती हैं। हां, निम्नवर्गीय स्त्रियों के गीतों में कमोबेश प्रतिरोध एवं विद्रोह जरूर दिखता है।

## देस–परदेस में 'उढ़री' नारी की सामाजिक एवं सांस्कृतिक छवि

भोजपुरी की एक बहुत लोकप्रिय लोकोक्ति है कि 'उढ़री औरत, टेम्पोरेरी नोकरी आ टटिहर घर के ओर छोर ना ह।' मतलब उढ़री औरत, टेम्पोरेरी (अस्थायी) नौकरी और झुग्गी झोपड़ीनुमा घर का कोई भरोसा नहीं होता है। भोजपुरी प्रदेश के लोककवि घाघ ने भी उढ़री औरतों से सावधान रहने शिक्षा दी है। उन्होंने कहा है कि 'मुये चाम–से–चाम कटावै, भुइँ सँकरी माँ सोवै। / कहै घाघ ये तीनों भकुवा, उढ़र पर रोवै।'[15] अर्थात् जो तंग जूता पहनता है, और जमीन पर भी तंग जगह में सोता है और अपना घर छोड़कर पराई स्त्री को लेकर भाग जाता है और फिर रोता है; घाघ कहते हैं, ये तीनों मूर्ख हैं।

उढ़री औरतों के साथ किये जाने वाले लोकव्यवहार पर बात करने से पहले हमें 'उढ़री' शब्द के अर्थ पर बात करना जरूरी है। इस संबंध में इतिहासकार शाहिद अमीन का मानना है– ''वह औरत जो परपुरूष के साथ भाग जाती है। हांलाकि उसके साथ रहने वाली वह औरत उसकी पत्नी नहीं होती है।''[16] दरअसल 'उढ़री' शब्द उढ़ार से बना है जिसका अर्थ होता है– भगा ले जाना। उढ़री नारी को 'अरधी' भी कहा जाता है लेकिन दोनों में अंतर यह है कि 'उढ़री' का विवाह

14 जॉर्ज ए. ग्रियर्सन, सेलेक्टेड स्पेसीमेंस ऑफ द बिहारी लांग्वेज भाग 2, द बिहारी डायलेक्ट द गीत नयका बनजरवा, जे. डी. एम. जी., वाल्यूम 53, (1889), पृ. सं. 468–507 इसे भी देखें, सत्यव्रत सिन्हा, भोजपुरी लोकगाथा, (प्रयाग : हिन्दुस्तानी अकेडमी 1957),

15 राम नरेश त्रिपाठी द्वारा संपादित 'घाघ और भड्डरी' (इलाहाबाद : हिन्दुस्तानी अकादमी, 1931), पृ. सं. 31, रामनरेश त्रिपाठी, ग्रामसाहित्य, तीसरा भाग, (दिल्ली : आत्माराम एंड संस, कश्मीरी गेट, 1952), पृ. सं. 207, घाघ भड्डरी की कहावतें (चौपटिया किताब) संपा. विष्णुकांत पाठक (दिल्ली : प्रकाश पब्लिकेशन, अनुमानित प्रकाशन वर्ष– 2009), पृ. सं. 53

16 शाहिद अमीन (संपा.), ए कॉनसाइज इनसाइक्लोपीडिया ऑफ नॉर्थ इंडियन पीजेंट लाइफ (दिल्ली : मनोहर पब्लिशर्स, 2005), पृ. सं. 47–48 में लिखते हैं – To urari, a women who has been enticed away; a women not his wife who lives with a man."

सामाजिक रूप से मान्यता प्राप्त नहीं है जबकि 'अरधी' का विवाह सामाजिक रूप से मान्यता प्राप्त है। उढ़री का शाब्दिक अर्थ और भोजपुरी लोकसाहित्य में इन औरतों की मौजूदगी से पता चलता है कि न केवल परपुरूष के साथ भाग जाने वाली बल्कि भगाकर लायी जाने वाली स्त्री को भी उढ़री कहा गया है। जैसे कि लोकगाथा लोरिकी में नायक लोरिक चनवा को भगा (चनवा का उढ़ार) ले जाता है या फिर जालिम सिंह नाटक में जालिम सिंह डोम की लड़की को भगा ले जाता है। इनके अतिरिक्त बहुत से गीतों में स्त्रियों को भगा लाया गया है। उपनिवेश के पहले भी भारतीय समाज व संस्कृति में स्त्रियों को भगा ले जाने की एक लंबी परंपरा रही है। ग्रियर्सन ने अपने एक लेख में एक बिरहा गीत का उल्लेख किया है जिसमें एक स्त्री (प्रिया) को पुरूष (प्रिय) द्वारा भगाये जाने के लिए 'उढ़रले' पद का प्रयोग हुआ है –

''हाथवा में डारले रम–रेखवा

गरवा में डारेले उदराछ

ललकी पगरिया बान्ह के यरवा

जानी के उढ़रले बा जात।''[17]

अर्थात् राम रेखा नाम की प्रिया ने अपने हाथों में चूड़िया पहन रखी है और गर्दन में उसने उदराक्ष (रूद्राक्ष) पहन रखी है। लाल पगड़ी बांधे उसका यार अपनी जानी (प्रिया) को भगा लिए जा रहा है। यहां गौर करने वाली बात यह है कि स्त्री के भागकर जाने में सारा दोष (चारित्रिक दोष) स्त्री पर आता है। दरअसल उढ़री वह औरत है जो अकेली या अपने बच्चों समेत परपुरूष के साथ रहती है। हालांकि वह उस पुरूष की विवाहिता नहीं होती है। उसके पास वह या तो भागकर आयी हुई होती है या फिर उस पुरूष के द्वारा भगाकर लायी गई होती है।

भोजपुरी प्रदेश से जिन महिलाओं का पलायन हुआ, उनमें अधिकतर विधवाएँ, बहिलाएँ (बंध्या औरतें), परित्यक्ताएं, अत्यंत निर्धन यानी हर तरह से शोषित–दलित महिलाएँ थीं। उन्होंने स्वेच्छा से कभी भी पलायन नहीं किया। यहां पंडित तोता राम सनाढ्य का संस्मरण (सन् 1914) उल्लेखनीय है। एक उन्नीस वर्षीय विधवा को उसकी सास एवं जेठानी मारते–पीटते थे। जेठ ने उसके साथ अवैध संबंध बनाया। उसको गर्भ रह गया। गर्भ गिराने को कहा गया लेकिन उसने ऐसा नही किया। उसे मारा–पीटा एवं दागा गया और घर से निकाल दिया गया और धमकाया गया

17 जॉर्ज ए. ग्रियर्सन, सम भोजपुरी फोकसांग्ज, जरनल ऑफ रॉयल एशियटिक सोसायटी, वाल्यूम 58, (1886), पृ. सं. 207–26. ग्रियर्सन ने इस बिरहा का भावार्थ लिखा है– ***Ram-Rekha has put bangles on his arm, and on his neck an Ud'rachh. The lover has tied on a red turban, and is carrying off his sweetheart.*** पृ. सं. 231

कि अगर वह लौटी तो उसे जान से मार डाला जायेगा। तोताराम बताते हैं कि ''ऐसे समाचार मेरे पास बहुत हैं, .....इलाहाबाद, कानपुर, आगरा, फैजाबाद, अयोध्या, बनारस, मथुरा आदि स्थानों में आसपास के गांवों की कितनी ही विधवाएं भटकती मिलेंगी। क्या झोपड़ा, क्या कंगूरेदार महल, प्रति सैकड़ा चालीस घरों से विधवाओं की आहों से गूंजती आवाज सुनाई देगी।''[18] अतः अकेली महिलाओं के प्रवसन के संदर्भ में अर्थशास्त्र की 'पुल एंड पुश थ्योरी' में से 'पुश थ्योरी' ही लागू होती है। परन्तु जो महिलाएँ अपने पतियों के साथ गयीं, उनके संबंध में ऐसी टिप्पणी नहीं की जा सकती। औपनिवेशिक दौर में भोजपुरी क्षेत्र से महिलाओं का पलायन भी आमतौर पर पूरब यानी कलकत्ता, आसाम जैसे नगरों/क्षेत्रों में ही होता था। इसका मतलब यह नहीं है कि उपनिवेश से पहले ये स्त्रियाँ पलायन नहीं करती थीं। भोजपुरी के मौखिक आख्यानों से पता चलता है कि उपनिवेश के पहले भी शोषित–पीड़ित स्त्रियों को बहुधा बलपूर्वक पलायन कराया जाता था। लोककथा कौवाहंकनी की नायिका ऐसी ही स्त्रियों की कथा–व्यथा की ओर संकेत करती है। लेकिन मेरा अध्ययन कलकत्ता में भोजपुरी क्षेत्र की प्रवासी औरतों पर ही केंद्रित है। कलकत्ता की जूट मिलों में काम करने वाली महिलाओं के संबंध में इतिहासकार समिता सेन के अध्ययन से हमें मदद मिलती है। कलकत्ता में ''ज्यादातर अस्थायी प्रवासी मर्द थे। जो भी प्रवासी महिलाएँ थीं, वे अधिकतर या तो विधवा थीं या नीची जाति की बाँझ औरतें।....यही महिलाएँ घरेलू नौकर थीं जो खाना पकाने से लेकर घर की साफ–सफाई वगैरह करती थीं।....और बड़ी संख्या में वही महिलाएं वेश्या बन जाती थीं।''[19] प्रवसन के समय जिन महिलाओं को पारिवारिक संरचना से छिटककर गैर–पारिवारिक माहौल में रहना पड़ा, उन्हें तत्कालीन समाज द्वारा वेश्या का तमगा पहना दिया गया। समिता सेन का यह कथन उल्लेखनीय है कि ''राष्ट्रवादी, सुधारक, मजदूर संघों के कार्यकर्त्ता, पत्रकार, उपन्यासकार इत्यादि सभी उन प्रवासी महिला श्रमिकों की नैतिक मनोदशाओं को मजबूती देने में लगे हुए थे। इनकी दृष्टि में जूट मिल की औरतें बदनामी और विकृति की प्रतीक बनी हुई थीं। वहाँ जैसे ही कोई औरत टेम्पोरेरी शादी करती, उसे वेश्या का नाम मिल जाता। उन बस्तियों या लाइनों को मलिन मान लिया गया था, जहाँ वेश्यावृति, रखैल और टेम्पोरेरी शादियाँ होती हैं।''[20]

औपनिवेशिक संस्थाओं द्वारा बटोरे गए आधिकारिक आँकड़ों से ज्ञात होता है कि भोजपुरी क्षेत्र से प्रवास करने वाले पुरुषों में से कुछ ही अपनी औरतों साथ ले गए। प्रवास में भी उन्होंने अपनी महिलाओं से मजदूरी करवाना परम्परागत संस्कार के प्रतिकूल (हेय) समझा लेकिन अन्य औपनिवेशिक परदेसों में संस्कारों के टूटने

18 तोताराम सनाढ्य, भूतलेन की कथा, संपा. बृज वी लाल एवं योगेन्द्र यादव (नई दिल्ली : सरस्वती प्रेस, 1994), पृ. सं. 141

19 समिता सेन, वूमेन एंड लेबर इन लेट कोलोनियल इंडिया, जूट इंडस्ट्री इन बंगाल 1880–1940 (कैम्ब्रिज : कैम्ब्रिज यूनिवसिटी प्रेस, 1999), पृ. सं. 25

20 वही, 176.

व प्लांटरों की ज्यादतियों की वजह से परिवार की स्त्रियों को भी खटना पड़ा। इधर 'रॉयल कमीशन ऑन लेबर इन इंडिया' जैसे आधिकारिक प्रयासों से प्रवासी महिलाओं के काम करने के संदर्भ में जिस तरह की सूचनाएँ सामने आती हैं, उनका उल्लेख करना आवश्यक प्रतीत होता है। *''अब्दुल हाकिम (दरभंगा से आया हुआ जूट मिल वर्कर) ने कहा 'मेरे जिले के लोग अपना परिवार लेकर इस औद्योगिक इलाके में नहीं आते हैं।.....यदि मैं अपना परिवार लाता हूँ तो लोग मुझ पर हँसेंगे। एक बंगाली मजदूर ने कहा 'मेरी पत्नी मिल में काम नहीं करती क्योंकि बंगाल में हमारी पत्नियाँ काम नहीं करतीं।' हावड़ा जूट मिल में काम करने वाली दिगम्बरी नामक मजदूरिनी ने कहा 'बंगाली औरतें जब तक विधवा नहीं होतीं, तब तक वे मिलों में काम करने के लिए नहीं आतीं।' इनके ठीक विपरीत छपरा (भोजपुरी पट्टी) से आयी हुई प्रवासी मजदूरिनी सुकवरिया ने अपनी बात रखी–'वह अपनी पुत्रियों को काम करने के लिए इसलिए लायी है क्योंकि वह बूढ़ी हो चली है।'*[21] इन कथनों से यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि उपर्युक्त कथनों में अभिव्यक्त किया हुआ सम्मानबोध उनकी सामुदायिकता की ही विचारणा है जिसमें उनकी अपनी पहचान समुदाय की पहचान में तब्दील हो गई है, उसी पहचान के नजरिये से वे अपने सम्मान एवं शर्म जैसी बात बताते हैं। आखिर अपने समुदाय की महिलाओं के बारे में ऐसा आदर्श क्यों गढ़ा जा रहा था? अर्थात् मजदूर समुदाय अपने घर या क्षेत्र की महिलाओं द्वारा काम किये जाने को अपमान क्यों समझता था? पुरुष प्रधान होने के कारण उस मजदूर समुदाय द्वारा अपनी स्त्रियों को 'इज्जत' की वस्तु समझना यह भी दर्शाता है कि किस प्रकार उन प्रवासी श्रमिकों के सामुदायिक सम्मान की धारणा पर व्यक्तिगत सम्मानबोध का प्रभाव था। इस कारण मिलों में काम करने वाली महिलाओं को वेश्यावृत्ति का प्रतीक मान लिया गया था। तत्कालीन आधिकारिक रिपोर्टों में इस संदर्भ में सूचनाएँ एकत्रित की गई हैं। रिपोर्ट में 'जूट मिल के मैनेजर ने कहा था–*''मिल में काम करने वाली अधिकतर औरतें काम के साथ वेश्यावृत्ति भी करती हैं।'*[22] ये सारी मजदूर औरतें प्रवासी थीं। कलकत्ता में जूट मिल की महिला श्रमिक, जो वेश्या की पर्याय थीं, आगे चलकर इस रूप में परिणत हो गई कि ''अधिकतर महिलाएँ पुरुषों के साथ रहने लगीं, यद्यपि वे उनकी पत्नियाँ नहीं थीं या अधिकतर अकेली महिलाएँ जो उनके साथ रहती थीं और अपने बच्चों के साथ भी रहती थीं। इनकी घरेलू स्थिति परिवार जैसी नहीं थी।''[23] यही औरतें प्रवासी उढ़रियाँ थीं।

जैसा कि पहले संकेत किया जा चुका है उपनिवेश के दिनों में इस प्रदेश से घर से मजबूर होकर स्त्रियाँ न केवल कलकत्ता, झरिया, धनबाद, आसाम जैसे

21 रॉयल कमीशन ऑन लेबर इन इंडिया, भाग 2, पृ. सं. 80, समिता सेन की पुस्तक 'वूमेन एंड लेबर इन लेट कोलोनियल इंडिया, जूट इंडस्ट्री इन बंगाल 1880–1940' से उद्धृत

22 कर्जेल रिपोर्ट, पृ. सं. 12, समिता सेन की पुस्तक 'वूमेन एंड लेबर इन लेट कोलोनियल इंडिया, जूट इंडस्ट्री इन बंगाल, 1880–1940' से उद्धृत, पृ. सं. 186–187

23 वही, पृ. सं. 187

तत्कालीन औद्योगिक व बागानी इलाकों में पलायन करती थीं बल्कि अंग्रेजों के अन्य उपनिवेशों में भी लिंगानुपात के संतुलन के लिए सस्ते मजदूर के रूप में भेजी गईं। दरअसल, उन दिनों मेलों में खो जाने वाली स्त्रियाँ भी अरकाटियों के लिए आमदनी की एक बहुत अच्छी स्रोत थीं। अरकाटी उन्हें छल से कुली भर्ती डिपों में भेज देते थे।[24] ध्यान रहे कि मेलों में खो जाने वाली स्त्रियाँ देहाती थीं। भोजपुरी प्रदेश के ग्रामीण इलाकों से झुंड की झुंड स्त्रियाँ मेला घूमने जाती थीं। उनके झुंड में से अक्सर कोई न कोई मेला में खो जाती थी। इस संबंध में उन दिनों के पुलिस रिपोर्ट भी गवाही देते हैं। इन मेलाघुमनी[25] स्त्रियों पर ही भिखारी ठाकुर का प्रसिद्ध नाटक 'गंगा स्नान' और भोजपुरी के सैकड़ों गाथाओं–कथाओं को लिपिबद्ध करने वाले बाबू महादेव प्रसाद सिंह का 'मेलाघुमनी' गीतिकाव्य आधारित है। तो इन्हीं खोयी हुई स्त्रियों को बहला–फुसलाकर अरकाटी रेल से कलकत्ता लेकर चले जाते थे। उन दिनों एक बार नवेली स्त्री घर से बाहर रही कि दूसरे दिन उसे घर में प्रवेश नहीं मिल सकता था। यह समझ इन स्त्रियों को मजबूरन गर्त की ओर ले जाता था। प्रेमचंद की प्रसिद्ध कहानी 'शूद्रा' में अरकाटियों द्वारा छल से उपनिवेशों में भेजी जाने वाली स्त्रियों के जीवन की सुध ली गई है। कलकत्ता से जहाज से मॉरीशस जैसे उपनिवेशों में पहुँचने पर और वहाँ के वातावरण में रहने से उनमें जो चारित्रिक बदलाव आता था और यदि पुनः सौभाग्य या दुर्भाग्य से उन्हें हिन्दुस्तान लौटने का मौका मिला, उनके लिए वह सब कम छलावापूर्ण नहीं था। अंग्रेजी भाषा के प्रतिष्ठित उपन्यासकार अमिताभ घोष की कृति 'सी ऑफ पॉपीज'[26] में अदिति नामक चरित्र के बहाने सामाजिक रूप से बहिष्कृत स्त्रियों की सुध ली गई है। इस तरह हम समझ सकते हैं कि भोजपुरी प्रदेश से स्त्रियों की प्रवसन प्रक्रिया किस तरह 'उढ़री' बनने की प्रक्रिया में तब्दील हो जाती है।

प्रवासी उढ़री औरतों के जीवन को समझने में भिखारी ठाकुर का साहित्य

---

24 शाहिद अमीन (संपा.), ए कॉनसाइज इनसाइक्लोपीडिया ऑफ नॉर्थ इंडियन पीजेंट लाइफ, (दिल्ली : मनोहर पब्लिशर्स, 2005), पृ. सं. 47–48 उत्तर भारत विशेष रूप से भोजपुरी प्रदेश में विविध नामों से जाने जानी वाली विवाहित स्त्रियों के नामों एवं उनकी स्थितियों के संबंध में इतिहासकार शाहिद अमीन ने इस रूप में टिप्पणी की है– *'These (ahiwati, duah, tiuah, dholkarhi, gharkaili, dhemnani, urhari, etc.,) terms are indications of the ability of some Bhojpuri women to walk out of unhappy homes, whether natal or of the in-laws. The standard police reports about women getting lost in melas never returning to home, and the significant migration of single women to the plantations in Assam and in Fijji make sense in terms of a pre-existing mobility of women, which cannot be reduced to the attractions and enticements of a distant labour market alone.";* **विस्तार से देखें**, *Samita Sen, 'Unsettling the Household: Act VI (of 1901) and the Regulation of Women Migrants in Colonial Bengal', in Shahid Amin & Marcel van der Linden (eds.), international Review of Social History, 41 (1960, Supplement 4; Brij V. Lal, Chalo Jahaji: A Journey through Indenture in Fijji (Australian National University, Canberra 7 Fijji Meuseum, Suva, 2000), Ch.5: 'Origins of the Girmitiyas'.* अरकाटियों द्वारा छल से स्त्रियों को कुली भर्ती डिपो भेजे जाने की खबर का मन्नन द्विवेदी गजपुरी ने अपने उपन्यास 'रामलाल' (1917 ई.) और प्रेमचंद ने अपने उपन्यास गोदान (1936 ई.) में संकेत किया है।

25 तुलसीराम ने अपनी आत्मकथा मुर्दहिया में 'मेलाघुमनी' उन स्त्रियों को कहा है जो नाचने वाली कसबिन होती हैं। खुद उनके शब्दों में– ''परंपरा के अनुसार (मंदिर में) छौनों की बली के साथ–साथ वेश्याओं का नाच भी देवी के सामने करवाया जाता था।... वहां नाचनेवालियों का झुंड भी मौजूद रहा करता था। मेरे गांव वाले इन्हें 'मेलाघुमनी' कहा करते थे। मेरे पिताजी भी नाच के लिए एक मेलाघुमनी दो रूपये में ढूंढ़ लाए। इन मेलाघुमनियों के साथ एक तबलची हुआ करता था।'' (दिल्ली : राजकमल प्रकाशन, 2010), पृ. सं. 100

26 अमिताव घोष, सी ऑफ पॉपीज़, उपन्यास (दिल्ली : पेंगुइन, 2008)

हमें पर्याप्त मदद करता है। उनके नाटक 'बिदेसिया' में सलोनी नामक चरित्र की उपस्थिति प्रवासी उढ़री के रूप में है। क्योंकि कलकत्ता में बिदेसी के साथ रहने से पूर्व वह भी एक प्रवासी मजदूरिनी थी। उसने बिदेसी से सामाजिक रूप से विवाह नहीं किया है। वह अपने सहकर्मी 'बिदेसी', जो भोजपुरी क्षेत्र से आया एक प्रवासी श्रमिक है, के साथ अपने बच्चों समेत रह रही है। दोनों की शादी 'टेम्पोरेरी' है। कुछ सालों से दोनों साथ रहते आ रहे हैं। भिखारी ठाकुर ने सलोनी को 'रखेलिन' नाम से भी संबोधित किया है। 'रखेलिन' शब्द 'रखैल' का भोजपुरी है। आज महानगरीय समाज में कुछ इस तरह की 'लिव इन' नाम की संकल्पना आयी है। परंतु दोनों ही संकल्पनाएँ दो समाज और दो समय में निर्मित हुई हैं। हालांकि दोनों में ही टेम्पोरेरीनेस है। लेकिन जहां तक इन दोनों संकल्पनाओं में सामाजिक महत्व की बात है तो लिव इन में रहने वाली स्त्री का सामाजिक स्टेट्स वही नहीं है जो उस उढ़री स्त्री का था। उसे सदा दोयम दर्जे का सामाजिक व्यवहार मिला। लोकसाहित्य में उसकी उपस्थिति उसी रूप में है। भिखारी ठाकुर के नाटक में भी उस उढ़री सलोनी के साथ वैसा ही बर्ताव हुआ है। नाटक के नायक बिदेसी की पत्नी प्यारी सुंदरी का संदेश लेकर गाँव से एक बटोही आता है। उसके घर की एक–एक बात याद दिलाकर बटोही बिदेसी को घर जाने के लिए व्याकुल कर देता है। बटोही सलोनी को 'रंडी' नाम से संबोधित करता है और उसके साथ व्यवहार भी वैसा ही करता है –

''रंडी में कुछ ना बाटे, कुत्ता जइसे हाड़ चाटे, एको घाट नाहीं तू हूँ लगबऽ बिदेसिया।

छोड़ि दऽ अधरम, मिजाज कके नरम, तूँ मनवा में कर लेहूँ सरम बिदेसिया।''[27]

वह जितनी सारी कसमें–वादे खा–खाकर रो रही है, सब झूठे हैं। अब तक किसी की नहीं हुई। ना पास–पड़ोस की, ना सास–ससुर की। न ससुराल की, न नैहर की। अंत मे बटोही सलोनी को भी समझाता है। ''ऐ बाड़ीवाली। बात मानो, बिना विचार के काम मत करो। थोड़ा कहता हूँ, पूरा समझो। अपना चाल–चलन, रहन–सहन अच्छा बना लो। मेरे कहने से बिदेसी को जाने दो। तुम्हारा बाजार बना हुआ है, तुम्हें बहुत 'छैल चिकनियाँ' (कामी पुरुष) मिल जाएंगे।'[28] पर वह नहीं मानती है क्योंकि वह जिन परिस्थितियों से होकर गुजरती आयी है, उसमें उसने समाज का क्रूर चेहरा देखा है। पति का अभाव उसे कहाँ से कहाँ ले आया। इतना झेलने के बाद अब जब पतिनुमा एक आश्रय मिला है वह भी उससे छीना जा रहा है। गौरतलब हो कि जिन दिनों भिखारी ठाकुर बिदेसिया की रखेलिन की छवि खींच रहे हैं, वह बींसवी सदी का तीसरा दशक है। इस संदर्भ में फीजी में 21 वर्षों तक प्रवासी रह चुके और प्रवासियों के हितार्थ संघर्ष करने वाले पं. तोताराम सनाढ्य के

27 वीरेन्द्रनारायण यादव व नागेन्द्र प्रसाद सिंह, संपा. भिखारी ठाकुर रचनावली, (पटना : बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, 2005), पृ. सं 46

28 वही, पृ. सं. 46

लिए प्रवासी महिलाओं को धोखा देकर घर लौट जाने वाले प्रवासी श्रमिकों का चरित्र भी एक मुद्दा था। उन्होंने सन् 1914 में कहा था कि ''फीजी से वापस लौटकर आने वाले ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य लोग देश में आकर यह विचार करते हैं कि फीजी की विवाहित स्त्री को यदि घर ले जायेंगे तो समाज के अनुसार घर में रहने पावेंगे? इस विचार से धोखा देकर फीजी की स्त्री को छोड़कर भाग जाते हैं और अपने घर–गाँव का झूठा पता फीजी की स्त्रियों को बता देते हैं, जिससे वे स्त्रियाँ उनको ढूँढ़ भी नहीं सकतीं। फीजी से चलते वक्त आधे रूपये स्त्री के नाम लिखा देते हैं।''[29] उन्हीं दिनों जरा बाबा रामचंद्र के इस कथन पर भी गौर करें कि कैसे उन्होंने अपने को पत्नी से अलग किया था– ''मैंने अपने मकानों व जमीन को अपने म्यारेज किये हुवे चमारिन के नाम करा कर उसके म्यारेज को भी खारिज कर दिया।... बाकी के कपड़े, बिछोने, बर्तन आदि सांसारिक चीजें व उत्तम फोटो और हाथ के लिखे हुए कई कागजों को वहां ही छोड़ कर उसी स्त्री को अर्पण कर दिया।''[30] गौरतलब है कि ये वही बाबा रामचंद्र हैं जिन्होंने अवध के किसान आंदोलन का नेतृत्व किया था। ये मराठी ब्राह्मण थे। रोजी–रोटी की तलाश में ये फीजी पहुंच गये थे। वहां एक सुंदर चमारिन से शादी कर ली। मजेदार बात एक और है कि इन्होंने अपने लेखन में कहीं भी उस 'सुंदर चमारिन' के नाम का जिक्र तक नहीं किया है। बल्कि बाद के लेखन में उस स्त्री को 'तामसी क्रूर स्वभाव' वाली कहा है। दरअसल तब वे बेहद धार्मिक हो गये थे। गिरमिट का अनुबंध खत्म होने और अपने वतन हिन्दुस्तान लौटते वक्त उन्होंने अपनी पत्नी को, जैसा कि पंडित तोताराम ने बताया है, कुछ सामान देकर अपने को विवाह संबंध से मुक्त कर लिया। तो प्रवासी स्त्रियों के साथ यह धेखाधड़ी न केवल फीजी वरन् अन्य औपनिवेशिक देशों से लौटने वाले श्रमिक करते थे। हिन्दुस्तान में भी कलकत्ता वगैरह से लौटने वाले श्रमिक यही करते थे। इस दृष्टि से 'बिदेसिया' की सलोनी के साथ ठीक वैसी ही धोखाधड़ी हुई है। जैसा कि वह पहले बिदेसी को घर न जाने देने के लिए यथासंभव प्रयास कर रही थी। उसने बिदेसी से कहा था – ''घरे चलि जइबऽ लवटि के ना अइबऽ, तूँ आस तुरि के सब नास कइलऽ बलमुआँ।

जइबऽ भवनवाँ परानवाँ तेयागि देहब, पाका जानऽ जनिहँ कहनवाँ बलमुआँ।

असल के हईं बेटी, इरिखे फँसल बा नेटी, कर तूरि घर जनि जइहऽ बलमुआँ।।''[31]

अर्थात् हे बालम! घर चले जाओगे, लौटकर फिर नहीं आओगे। तुमने हमारी सारी आशाएँ नष्ट कर दीं। गाँव जाओगे, प्राण त्याग दूँगी। मेरी बात को पक्का समझना। 'असल' की बेटी हूँ। ईर्ष्यावश मेरी गर्दन फँसी हुई है। हाथ तोड़कर घर

29 तोता राम सनाढ्य, भूतलेन की कथा, संपा. ब्रिज वी लाल व योगेन्द्र सिंह (1994), पृ. सं. 143–44

30 बाबा रामचंद्र पेपर्स (बीआरपी), स्पीचेज एंड राइटिंग्स (एस डब्ल्यू), सीरियल नं. 2डी पृ. सं. 20

31 वीरेन्द्रनारायण यादव व नागेन्द्र प्रसाद सिंह (संपा.), भिखारी ठाकुर रचनावली, (पटना : बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, 2005), पृ. सं. 46

मत जाओ। ऐसे उपहासास्पद राही की बात सुनकर अपना मन उदास मत करो। तुम्हारे ही कारण माँ–बाप को छोड़ दिया। अब मैं कौन उपाय करूँ। माता–पिता, भाई–भाभी, घर–द्वार, जाति–कूल, खानदान, परिवार, यहाँ तक कि अपना समस्त समाज छोड़कर तुम्हारे पास आयी हूँ। जरा नीति से विचार करके देखो और धैर्य धरो, प्रेम में विलम्ब होता है। हे प्राणपति! बाँह पकड़कर मेरी इज्जत को बहाल रखो।''[32] सलोनी का यह कथन बिदेसी के प्रति उसके प्रेम की गहराई को दर्शाता है। सलोनी जैसी स्त्रियों का प्रेम ही तो होता है, जो उन्हें शराबी पति को छोड़ देना भी गंवारा नहीं होता है। जरा इस लोकगीत को देखिए–

''बाबू दारोगाजी कवने गुनहिये बन्हली पियवा मोर।

ना मोर पियवा चर रे चमरवा, ना मोर पियवा चोर।

मोर त पिअवा मधुवा के मातल, रहले सड़किया पर सोई।

अन्नी दुअन्नी सिपाहिया के देवो, पाँच रूपइया जमादार।

ई दुनो जोबना कलक्टर के देबो, पिअवा के लेबो छोड़ाई।

बाबू दारोगाजी कवने गुनहिया बन्हली पियवा मोर।''[33]

अर्थात् ऐ दारोगा बाबू! किस कारण मेरे पिया को आपने बाँध रखा है। मेरे पिया चोर–चमार नहीं हैं बल्कि वे मदिरा पी लिये थे और सड़क पर सो गये थे। देखो! नहीं छोड़ोगे तो एकनी–दुअन्नी सिपाही को दूँगी, जमादार को पाँच रूपया दूँगी। ये दोनो 'जोबन' कलक्टर साहब को देकर अपने पिया को छुड़ा लूँगी। इस गीत को सामाजिक–राजनीतिक संदर्भ में देखने पर पता चलता है कि औपनिवेशिक सता ने कुछेक जातियों को अपराधी घोषित कर दिया था। पुलिसिया व्यवस्था जातीय आधार पर चोरों को पकड़ती थी। यह पूर्वाग्रह भारतीय समाज की सबसे बड़ी सच्चाइयों में से एक रही है। औद्योगिक शहर में पत्नी यदि काम करती है तो पति अधिकतर शराबी, व्यक्तित्वहीन इत्यादि रूपों में सांस्कृतिक रूप से उपस्थित दिखाई पड़ता है और उसकी पत्नी काफी तेज–तर्रार। तेज–तर्रार माने वेश्यावृति भी करती है। इसीलिए उसकी छवि इस गीत में ऐसी बनती है कि पुलिस–सिपाहियों को रूपया दे देगी और निर्णय देने वाले को अपना जोबन यानी अपना शरीर देकर अपने पति को छुड़ा लेगी। यहाँ यह भी गौरतलब है कि शहर में शराबी पतियों की पत्नियों को कितने स्तरों पर लड़ना पड़ता है। यह बड़े ताज्जुब की बात है कि यह स्त्री भी अन्य स्त्रियों तरह ही पति को परमेश्वर रूप में मानती है। तभी तो वह

32 वही, पृ. सं. 46

33 दुर्गाशंकर प्रसाद सिंह, भोजपुरी लोकगीत में करूण रस, (प्रयाग : हिन्दी साहित्य सम्मेलन, 1994), पृ. सं. 230

चोरी करने वाले, बेरोजगार शराबी पति को भी छोड़ नहीं पाती है। वह औपनिवेशक प्रशासनिक व्यवस्था से लेकर सामंती व्यवस्था के अवशेषों से संघर्ष करती है। परन्तु उसके संघर्ष के प्रति संस्कृतिकर्मियों ने भी वैसा ही परंपरागत व्यवहार रखा है।

भिखारी ठाकुर की सलोनी 'उढ़री' (रंडी) नाम की सामाजिक पीड़ा को बेहतर ढंग से समझती है। परिवार से उसे संरक्षण और सम्मान मिलेगा। सामाजिक कचोटों से वह मुक्त रहेगी। लेकिन जैसे ही उसका पति उसे छोड़कर गाँव भाग जाता है, उसके सारे सपने चकनाचूर हो जाते हैं। उसे लगा कि उसका नाम अब उढ़री पड़ गया। ''आजुए से उढ़री नइया परल हो राम।'' बड़ा दिलचस्प है कि सलोनी एक उढ़री का जीवन जी रही थी लेकिन वह स्वयं को उढ़री के रूप में नहीं देख रही थी। यहाँ यह कहना बेमानी नहीं होगा कि मनुष्य तथाकथित सामाजिक रूप से कितना भी निम्न क्यों न हो उसके आदर्श उच्च वर्गीय आदर्शों के अनुकूल ही होते हैं। अर्थात् ''इन प्रवासी उढ़रियों का आदर्श परिवार का आदर्श अवश्य था और अपने समुदाय के संस्कार–आदर्श भी।''[34] संस्कार अत्यंत प्रतिकूल वातावरण में भी जीवित रहना जानते हैं। अपने संस्कारों के कारण ही वेश्यालयों की वेश्यायें भी अपने खानपान में भेद–भाव रखती थीं। उन दिनों कलकत्ता से निकलने वाले हिन्दी साप्ताहिक समाचार पत्र 'विश्वमित्र' में ए. पी. मिश्र ने लिखा था– ''वेश्यालयों में विभिन्न हिन्दू जाति की स्त्रियाँ रहती हैं। इस संबंध में एक विचित्र बात यह है कि यद्यपि ये स्त्रियाँ पेशे को अख्तियार करने के बाद हिन्दू समाज के उत्पीड़न से मुक्त हो जाती हैं, फिर भी खान–पान के मामले में हम पेशेवर होते हुए भी एक–दूसरे के प्रति जाति–भेद रखती हैं। यद्यपि उनके यहाँ सब जातियों के आदमी आते हैं, यहाँ तक कि मुसलमान भी, फिर भी खान–पान के मामले में वे अपनी कट्टरता अक्षुण्ण बनाये रखती हैं।''[35] मतलब जब विशुद्ध वेश्यालयों में हिन्दुस्तानी समाज के प्रत्येक समुदाय का संस्कार जीवित रह सकता है तो फिर बस्तियों या लाइनों में रहने वाली, बहुत कुछ परिवार की तरह रहने वाली इन प्रवासी उढ़रियों में वह संस्कार जीवित कैसे नहीं रह सकता?

पूरब से लायी जाने या आने वाली औरतों के प्रति किया जाने वाला व्यवहार भी एक गंभीर मसला रहा है। इन स्त्रियों का आगमन सबसे पहले पारिवारिक ढांचे पर असर डालता है। लोकसंस्कृति में इनकी छवि विविध रूपों में चित्रित है। जब कोई परदेश से अपने गाँव लौटता है तो सिर्फ रूपये–पैसे या सामान इत्यादि लेकर ही नहीं लौटता बल्कि वह प्रवास से विचारों को भी लाता है। जैसा कि हरभजन सिंह ने अपनी आत्मकथा में लिखा है– ''अपना गांव छोड़कर परदेश जाने वाला आदमी जब वापस आता है तो अपने साथ कुछ सचेत या अचेत ब्यौरे लेकर आता

34 धनंजय सिंह, भोजपुरी प्रवासी श्रमिकों की संस्कृति और भिखारी ठाकुर का साहित्य (नोएडा : वीवी गिरि राष्ट्रीय श्रम संस्थान, 2008), पृ. सं 44.

35 विश्वमित्र (दिल्ली : माइक्रोफिल्म, एनएमएमएल) नवम्बर, 1934

है कि चाहे–अनचाहे गांव और शहर के रहने वालों के बीच एक फासला बना रहता है। एक नूर आदमी, हज़ार नूर कपड़ा (एक तरह का आदमी, हज़ार तरह के कपड़े) को शहर के सुंदर लिबास वाले आदमी का गुण कहा जाता है, पर गांवों में किसी–किसी के लिए कपड़ों की भिन्नता ही जान का रोगी बन सकती है।''[36] और इन विचारों के साथ कई लोग स्त्री भी लाते हैं। उपनिवेश–पूर्व या उपनिवेश के दिनों में बहुत लोग (श्रमिक–व्यापारी, सिपाही व श्रमिक) पत्नी के रूप में स्त्रियों को भी लेकर आये। वे नारियाँ अपनी स्थानीय संस्कृति के साथ शहर में रहने के कारण कुछ शहरी मूल्यों को भी लेती आयीं। लोकसाहित्य, विशेष रूप से स्त्रियों के गीतों, से पता चलता है कि उन नारियों के प्रति भोजपुरी लोक समाज ने बेहद बेरहमी की है। लोक समाज ने उसे सदा हीन समझा है और यहाँ तक कि 'रंडी' भी कहा है। उसे हेय देखे जाने की वजह है उसकी जाति–धर्म का पता न होना और यह मान लेना कि वह निम्नजाति की ही होगी। हीन–ग्रंथि या शोषण से तंग आकर कुछ स्त्रियाँ बंगाल यानी वे जहां से आयी थीं, वहां लौट गयीं[37] तो कुछेक ने तालाब या कुएँ में अपनी जान दी और कुछेक ने जहर खाकर मुक्ति की शरण ली। भोजपुरी लोकगीतों में बंगाल या मोरंग से आयी हुई ऐसी नारियों की तस्वीरें बहुतायत मात्रा में हैं। यह बहुत दिलचस्प है कि प्रवासी व्यापारी, सिपाही या श्रमिक कहीं से भी अपने घर स्त्री लाता है, गांव–घर उस स्त्री को 'बंगालिन' नाम से ही संबोधित करता है। परिवार समाज की पहली इकाई है। उन नारियों के प्रति दोयम दर्जे का व्यवहार अधिकांशतः समाज की पहली इकाई द्वारा ही हुआ है। जरा इस लोकगीत को देखिए–

''बोअलों में गोहुआँ उपजि गइली अंकरी, मेडवा बइठल प्रभु झँखेली रे की।
जनि प्रभु झँखहुँ जनि प्रभु झुरवहु, अंकरी बदलि गोहुवाँ पीसब रे की।।1।।
पसत कुटत मोरा धनि दुबरइली, कहतू त चेरिया ले अइतो रे की।।2।।
चेरिया आने गइले सवत ले अइले, सवति बिरहिया कइसे सहब रे की।।3।।
एक पैना मरले दुसर पैना मरले, पुरुबी बंगालिनि नाहीं बोले ली रे
की।।10।।''[38]

इस जँतसारी लोकगीत में पति एक और पत्नी, पूरुबी बंगालिन, घर में ले आया है। वह खेत पर काम करने चला गया है। इधर घर में सौतिया डाह से पहली पत्नी ने अपनी बड़ी गोतिनी की सलाह से उस बंगालिन सौतन को खाना में जहर दे दिया। जहर से बंगालिन का माथा घूमने लगा तो वह धौरहर पर जाकर सो गई। पति खेत से हल चलाकर लौटा तो पूछा कि वह सभी को तो देख रहा है परन्तु उसकी पूरब देस की बंगालिन नहीं दिख रही है। जेठानी ने उत्तर दिया 'तुम्हारी

36 हरभजन सिंह, चोला टांकियावाला, अनुवाद–नरेश नदीम, (दिल्ली : सारांश प्रकाशन), पृ. 31

37 तुलसी राम, मुर्दहिया, आत्मकथा (दिल्ली : राजकमल प्रकाशन, 2010)

38 दुर्गाप्रसाद सिंह, भोजपुरी लोकगीतों में करुण रस (प्रयागः हिन्दी साहित्य सम्मेलन, 1944), पृ. सं. 78

नई बहू गर्व और गुमान में माती हुई है। वह धौरहरे पर सो रही है।' क्रोध में आकर उसने धौरहरे पर सोई अपनी बंगालिन को एक पैना (जिससे बैल को हल चलाते वक्त हाँका जाता है) मारा, दूसरा पैना मारा लेकिन वह नहीं बोली। वह बोले भी कैसे, वह तो मर चुकी थी। यह बड़ी मजेदार बात है कि बंगाल में जो औरतें प्रवासी मर्दों को अपने जादू टोना से सुग्गा या भेड़ा बना लेती थीं, वही उनके (जिन मर्दों के साथ प्रवास में रहती थीं) गांव लौटने पर उनके सारे जादू टोना फिस्स हो जाते हैं। इस संवेदना को दर्शाने वाले अनेकों लोकगीत हैं।

## निष्कर्ष

इस प्रकार हम देख सकते हैं कि प्रवसन की भोजपुरी लोकसंस्कृति में स्त्रियों की छवि बहुरंगी है। ये स्त्रियाँ भी कई अर्थों में प्रवसन की पीड़ा सह रही हैं – चाहे वह गांव पर छूटी हुई हो, मजबूरन पलायन कर गई हो या फिर पुनः पुरूष के संग उढ़री रूप में गांव आई हो। प्रवसन की लोकसंस्कृति में जिस गंभीरता से भिखारी ठाकुर ने इन स्त्रियों की सुध ली है, उतनी गंभीरता से अन्यों ने नहीं ली है। उन्होंने अपने नाटक 'बिदेसिया' में घर पर छूटी स्त्री प्यारी सुंदरी का जो आदर्श रूप रखा था, वह लंबे प्रवसन के कारण 'गबरघिचोर' नाटक में मसक गया है। यानी संस्कृति के आदर्श और यथार्थ के दबाव में पवित्रता भंग हो गई है। लेकिन वहां वह मुद्दा महत्वपूर्ण नहीं है बल्कि वह मातृत्व के अधिकार की महत्ता में बदल गया है। उधर बिदेसिया नाटक में दूसरी पत्नी (रखैल) सलोनी को सामाजिक मान्यता दी गयी है, वह अपने से पूर्व के लोक सांस्कृतिक व्यवहार की तुलना में प्रगतिशील कदम है। प्रवसन की लोकसंस्कृति में पूरब देस से आयी स्त्री को यह स्थान नहीं मिला था।

भविष्य की पुनर्कल्पना RE-IMAGINING FUTURES

TISS

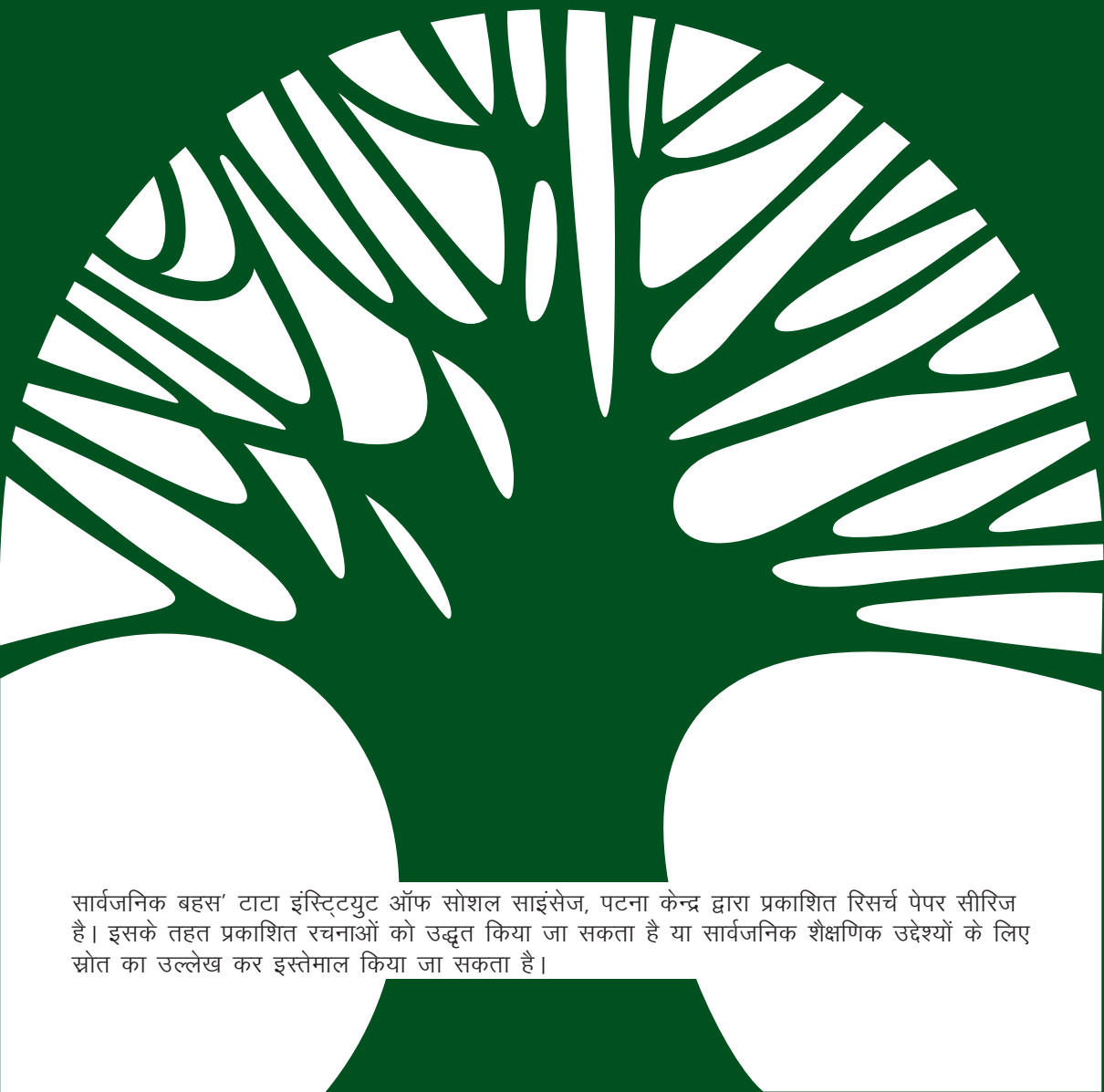

Tata Institute of Social Sciences
Patna Centre

सार्वजनिक बहस' टाटा इंस्टि्टयुट ऑफ सोशल साइंसेज, पटना केन्द्र द्वारा प्रकाशित रिसर्च पेपर सीरिज है। इसके तहत प्रकाशित रचनाओं को उद्धृत किया जा सकता है या सार्वजनिक शैक्षणिक उद्देश्यों के लिए स्रोत का उल्लेख कर इस्तेमाल किया जा सकता है।